International Journal of Applied Research 2015; 1(11): 1061-1063

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(11): 1061-1063
www.allresearchjournal.com
Received: 28-08-2015
Accepted: 30-09-2015

प्रवीन शर्मा
शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
म.द.वि., रोहतक

Correspondence
प्रवीन शर्मा
शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
म.द.वि., रोहतक

रामायण कालीन राजपद्धति

प्रवीन शर्मा

समाज और राज्यसंस्था परस्पर अत्यन्त सम्बद्ध हैं। मनुष्य में जब सामूहिक रूप से निवास की प्रवृत्ति विकसित हुई और समाज को रूप मिलने लगा तभी से शासनसंस्था को विकसित करने की ओर मानव उन्मुख हुआ। प्राचीन मानव ने प्रथमतः जब राज्य संस्था का श्रीगणेश किया था तब निश्चित ही जीवन का क्षेत्र अन्धकारपूर्ण परिस्थितियों से व्याप्त था।

प्रचीन भारतीय ग्रन्थ राजयसंस्था के निर्माण में दैवीशक्ति का आधार ग्रहण करते हैं। आदि स्वर्णकाल के अनन्तर कालक्रम से मानवता मात्स्य न्याय से ग्रस्त हो गई। उस परिस्थिति से मानवता की रक्षा के लिए दैवी शक्तियों ने राजा या राज्यसंस्था की सृष्टि की ऐसा उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त है।[1]

राजा का सम्राट ही राज्यसंस्था के प्रतीक के रूप में माना जाता था। रामायण में राजा के प्रारंभिक स्वरूप को उक्त दैवी शक्ति की सहायता के रूप में ही चित्रित किया गया हैं

उत्तरकाण्ड में कहा गया है कि सत्य युग में कोई राजा नहीं था। देवताओं में शतक्रतु राजा था। मनुष्यों ने भी ब्रह्मा से देवताओं की ही तरह एक राजा प्रदान करने की प्रार्थना की जिस पर वे अवलम्बित रह सकें और पाप मुक्त हो सकें।

इस प्रार्थना पर ब्रह्म ने इन्द्र तथा समस्त लोकपालों को आहूत किया तथा एक ध्वनि 'क्षुप' उत्पन्न की और उससे एक पुरुष की उत्पत्ति की, उसी में इन्द्र तथा समस्त लोकपालों की शक्तियों का समावेश और उसे 'क्षुप'[2] नाम से सम्बोधित करते हुए राजा घोषित किया।

रामायण में जो राज्यसंस्था वर्णित है उसमें परंपरागत राजा की प्रधानता है। शासनसूत्र का संचालक राजा ही होता था। राज्यों की एक राजधानी होती थी जिसे 'पुर' कहा जाता था। राज्य में अन्य नगर भी होते थे। नगर के आस–पास अनेक ग्राम तथा घोष होते थे। सम्पूर्ण देश में एक ही राजा का राज्य होने का उदाहरण रामायण में नहीं है।

अश्वमेघ यज्ञ का सम्पादन रामायण काल में प्रचलित था परन्तु उसका उद्देश्य धार्मिक तथा पारम्परिक ही था। इस यज्ञ से राजाओं की अधीनता न ही सूचित होती थी, यद्यपि अयोध्या का राजदरबार अनेक अधीनस्थ राजाओं से सुशोभित था। सामन्तगण दशरथ के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए उपस्थित होते थे। किष्किन्धाकाण्ड में राम ने कहा है कि पर्वतों और जंगलों से युक्त सारी पृथ्वी इक्ष्वाकु राजाओं के राज्य में सम्मिलित है। राम का यह कथन अपना अतिशय प्रभाव दिखाने के लिए ही है, क्योंकि वन गमन के समय उन्होंने अपने राज्य की सीमा को रथ में बैठकर एक दिन में ही पार कर लिया था। उस समय कैकय तथा विदेह राज्य अयोध्या के उत्तर पश्चिम तथा पूर्व की ओर विद्यमान थे।

बालि ने भी राम को दोषी बतलाते हुए कहा था कि उस पर प्रहार करने का राम का कार्य अपनी राज्य सीमा से बाहर दूसरे की सीमा में अवैधानिक हस्तक्षेप है। दशरथ और राम के लिए रामायण में सम्राट, सर्वराज, चक्रवर्ती, अधिराज आदि विशेषणों का प्रयोग मिलता है।[4] इन शब्दों का प्रयोग व्यापक न होकर प्रभाव प्रदर्शनार्थ ही स्वीकार किया जा सकता है। प्रकृति शब्द का प्रयोग रामायण में प्रचुर है। वहां इसका अर्थ जनता, मंत्रीगण तथा शासक वर्ग है।[5] अर्थशास्त्र में स्वामी अमात्य आदि जिन सात राज्ययांगों का प्रकृति शब्द से ग्रहण है, रामायण में उस अर्थ में इसका प्रयोग नहीं है।

राज्य के विभिन्न अंगों का वर्णन रामायण में उपलब्ध है। किष्किन्धा काण्ड में प्रायः सभी राज्यतत्त्वों का एकत्र उल्लेख है।[6] अमात्य का इस स्थल पर नाम नहीं लिया गया परन्तु अन्यत्र अमात्य का भी उल्लेख है। राजा के गुणों की चर्चा राज्यांगों के साथ ही है। राजा विश्वामित्र से कुशल प्रश्न करते हुए वसिष्ठ ने उनके मन्त्री तथा सहायकों के लिए भी कुशल प्रश्न किया। महर्षि भरद्वाज ने भी भरत से राजधानी, राज्य, कोश आदि से सम्बद्ध कुशल प्रश्न किया। इन उद्धरणों से राज्य के अंगों की उपदेयता के साथ उनके वैशिष्ट्य का भी संकेत मिलता है।

राजतंत्र में राजा ही प्रधान होता है। संपूर्ण कार्यों की सफलता राजा पर ही निर्भर होती है। मन्त्री, कोष, सेना, सहायक आदि का स्थान राजा के उपरान्त आता है।

राज्यसंस्था समाज के कल्याण और उसकी सुख सुविधा का समुचित प्रबन्ध करने का उत्तरदायित्व वहन करती थी। प्रजाजनों के द्वारा उपार्जन का एक अंश राज्य के लिए देना भी यह प्रमाणित करता है कि प्रजा के सर्वविध संरक्षण का उत्तरदायित्व राजा पर था। प्रजा अपने हितों से विरोध रखने वालों को राजा बनाने से रोक सकती थी तथा प्रजा विरोधी राजा को पदच्युत भी कर सकती थी। दशरथ ने युवराज के लिए प्रजा की अनुमति मांगी थी। प्रजा विरोध के कारण सगर ने अपने पुत्र असमन्ज को राज्य से बहिष्कृत कर दिया था।[7] स्वार्थी शासक को समीपस्थ अन्य राज्य में निर्वासित कर देना उसका उचित दण्ड था। राज्यसंस्था या राजा के अभाव में समाज में अनेक बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं। रामायण के अनुसार राजा के अभाव में प्रजा में असुरक्षा की भावना फैल जाती है, धार्मिक, आर्थिक स्थितियां शोचनीय हो जाती हैं। राजा के अभाव में सर्वत्र जंगल के दृश्य उपस्थित हो जाते है। निर्बल और धनहीन, सबल व्यक्तियों के द्वारा आक्रान्त हो जाते हें। रामायण के अनुसार धार्मिक, आर्थिक, साहित्यक तथा सामाजिक कार्य कलापों का सुचारू निर्वाह तभी सम्भव है जब शासन अपने आवश्यक कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो।

ब्राह्मण की हत्या गंभीर अपराध था। देवता और राजा को भी अपने पद से गिरा सकता था। राजा को प्रजा पर शासन करने के निरंकुश अधिकार नहीं थे। धर्म की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की गई थी। राजा धर्म का सुचारू प्रवर्तन करने वाला होता था। वह धर्म का निर्माता नहीं था। वह धर्म को अपनी इच्छा से नहीं चला सकता था। धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित तथा उस समय परंपरा से प्रचलित रीतियां ही धर्म का रूप ग्रहण करती थीं। किसी राज्य या राजा की सुचारूता का परिचय वाल्मीकि प्रायः यही कह कर देते हैं कि वह धर्म तथा न्याय से शासन करता था। धर्म का शासन कठोर था, सभी प्रजाजनों के तथा स्वयं दशरथ के न चाहते हुए भी राम को वन जाने से कोई रोक नहीं सका। राम का धर्म विरुद्ध तपस्या करते हुए शूद्र को दंडित करना भी इसका उदाहरण है।

वैदिक काल के समय शक्ति–संतुलन बनाये रखना राजा का प्रमुख कार्य था। प्रारम्भिक सामाजिक परिस्थितियों में जब अधिकांश मनुष्य समूह बद्ध होकर भ्रमणशील अवस्था में रहा करते थे तब बाहरी आक्रमणों और आन्तरिक अवस्थाओं से रक्षा के लिए सभी सदस्यों को शक्तिशाली पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता होती थी। वाल्मीकीय रामायण में राजतंत्र के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के शासन रूप की सूचना उपलब्ध नहीं है। राजा को सैन्यबल के अधिपति के गुणों से भूषित होना आवश्यक था। कुपित होने पर वह देवों से भी संग्राम में समर्थ हो सके, ऐसी स्थिति आर्दश राजा की मान्य थी। रामायण काल में समाज में वर्णव्यवस्था पूर्णरूप से प्रतिष्ठित थी। राजा पद केवल क्षत्रिय के लिए नियत था। आर्य राज्यों में केवल क्षत्रिय ही राजा थे। आर्यभिन्न राज्यों में राक्षसों में रावण, वानरों में बाली, निषादों में गुह राजा थे। राजतंत्र वंशपरंपरागत क्रम से प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। रामायण में दशरथ और जनक की वंशावली के उल्लेखों से वंश परम्परागत राजतंत्र का प्रतिष्ठित होना स्पष्ट है। दशरथ ने अपने राज्य को इक्ष्वाकु पूर्व नरेन्द्रों से पालित कहा है। भरत ने भी राम को इस तथ्य का स्मरण दिलाया था। वानरों में भी राजा पद पर वंशपरम्परागत क्रम मान्य था।

रामायण के सन्दर्भों में स्पष्ट है कि राजा अपनी दैवी–शक्ति में विश्वास करता था। राम ने बाली से कहा कि राजा पृथ्वी पर दैवी शक्ति के रूप में अवतीर्ण है। उसका अपमान या उस पर आघात नहीं किया जा सकता। रावण का कथन है कि राजा अग्नि, सोम, वरुण, इन्द्र और यम का प्रतिनिधि है। अतः सभी को चाहिए कि वे राजा को पूर्ण सम्मान प्रदान करें। राजा के पास भी वह सामर्थ्य नहीं माना जाता था कि वह अनियन्त्रित होकर मनमाना आचरण करे। राजा और प्रजा दोनों के अधिकारों की आलोचना करने पर राजा का अधिकार क्षेत्र अधिक स्पष्ट हो जाता है। उस समय राज्य पर वंश क्रमागत राज का अधिकार था, यह बात रामायण से सिद्ध है। परन्तु राज्य पर राज का अनियन्त्रित तथा मनमाना स्वामित्व प्रजा को स्वीकार नहीं था। राज्य मूलतः उसके निवासियों का ही होता था। किसी भी राज्य में राजा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, अपितु प्रजा की समृद्धि और कल्याण के लिए होता था। यही कारण था कि उत्तराधिकार स्वयं स्वीकृत ही था। उत्तराधिकार के लिए राज्य के अधिकारियों तथा प्रमुख प्रजाजनों की स्वीकृति अपेक्षित होती थी। राजा के ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकारी होने की प्रणाली से प्रजा आबद्ध नहीं थी। इस प्रणाली के कार्यान्वयन के लिए भी यह देखना आवश्यक होता था कि राजा का ज्येष्ठ पुत्र नियमपूर्वक विवाहित रानी से उत्पन्न है तथा वह राजोचित्त गुणों से युक्त है। राजोचित्त गुण न होने पर राजा उसे राज्यरोहण से वंचित कर देता था। इतना ही नहीं उसके राज्य में रहने पर यह आशंका रहती थी कि प्रजा कहीं उसे विरूद्ध राजा को उस राज्य से बहिष्कृत न कर दे। अतः स्वयं राजा ही उसे अपनी राज्य सीमा से बाहर कर देता था। राजा नियमों का संरक्षक और समर्थक होता था। सभी क्षेत्रों में राजा से अनुकरणीय और आदर्श व्यवहार की अपेक्षा की जाती थी, क्योंकि प्रजा राजा के व्यवहारों को आदर्श समझ कर उनका अनुकरण करती थी। इसके साथ ही समाज में यह विश्वास भी बद्धमूल था कि प्रजाजनों में व्याप्त होनेवाले दोष तथा विपत्तियां राजा के कर्तव्य विमुख होने के कारण ही आती है।

लोकापवाद का उस समय राजा को अत्यधिक भय होता था। ऋषियों तथा साधु पुरुषों को उद्विग्न करना भी राज–भय का कारण बनता था। ये बातें राजा को सच्चे तथा उचित मार्ग पर चलने के लिए सावधान रखती थी। रामायण में राजा के अधिकारों की उतनी चर्चा नहीं जितना उसके कर्त्तव्यों पर बल दिया गया है। प्राचीन भारत में राजा का पद शोभामात्र के लिए कभी नहीं था। राजा गम्भीर उत्तरदायित्वों से सर्वदा घिरा रहता था। उसे अनेक विशिष्ट कार्यों का निरन्तर सम्पादन करते रहना पड़ता था। राजा शब्द का प्रयोग प्रजा के रंजन या उसकी प्रसन्नता के संपादक होने का अर्थ मेल में रखता है। अतः प्रजा को सब प्रकार से प्रसन्न रखना राजा के प्राथमिक कर्तव्यों के अन्तर्गत आता था। वाल्मीकि ने राम को प्रजा को प्रसन्न रखने के गुण के कारण ही अपने अभीष्ट आदर्श राजा के रूप में देखा। प्रजारंजन के लिए सर्वप्रथम राजा बाहरी तथा आन्तरिक विपत्तियों से प्रजा की पूर्ण सुरक्षा करता था। बाहरी आक्रमण से सुरक्षा के लिए अपना बल बढ़ाने के साथ ही उचित तथा समयानुकूल उपायों से शक्तिसंतुलन बनाना भी राजा के लिए आवश्यक था। प्रजा की आन्तरिक सुरक्षा के लिए राजा को राक्षसों के क्रोधपूर्ण उपद्रवों से उसकी रक्षा करनी होती थी। दस्युओं के आतंक से उसे बचाना पड़ता था तथा रोग और अकाल जैसी विपत्तियों का प्रतीकार करना पड़ता था।

दशरथ से विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की मारीच और सुबाहु नामक राक्षसों से रक्षा के लिए राम को भेजने की मांग की थी। राम ने दण्डकारण्य की निवासियों से उन्हें राक्षसों के उपद्रव से निर्भय बना देने की प्रतिज्ञा की थी। राम ने शत्रुध्न को यमुना नदी के तीर पर रहने वाले तपस्वियों को लवणासुर से रक्षा करने के लिए उसके वधार्थ भेजा था। लोगों को कोई कष्ट न हो, तथा अपने अधिकारियों की ओर से अन्याय पूर्वक किसी के धन का अपहरण जैसे अभद्र कार्य न होने पायें इसका भी राजा को पूर्ण ध्यान रखना पड़ता था। केवल नगरवासियों की तथा ग्रामवासियों की सुरक्षा तक ही राजा का कर्तव्य सीमित नहीं था। अपितु अरण्य की कुटियों में निवास करने वाले तपस्वियों की सुरक्षा का दायित्व भी उस पर था। वस्तुतः तपस्वियों की रक्षा राजा का अत्यन्त आवश्यक कार्य था, क्योंकि वह उत्पादन के षष्ठ भाग लेने का अधिकार रखता था और इस प्रकार उसे तपस्वियों की कठोरता से अर्जित तपस्या का भी षष्ठांश स्वतः प्राप्त हो जाता था।

नियमों का निर्माण करना राजा की अधिकार सीमा में नहीं था। उनका पालन कराना उसका कर्तव्य था। दुर्बल और गरीब लोग सबल तथा सम्पन्नों के साथ समाज में तभी रह पाते थे जब राजा विधान और व्यवस्था को सुरक्षित रख सके। वह धर्म का प्रतिपालक होता था और अपने शासन को योग्य तथा प्रभावशाली बनाने के लिए उसे दुष्टों के दमन करने का अधिकार था। मनु ने भी दण्ड को महत्व देते हुए कहा है –

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति [8]
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।

प्रवीण राजा अपने अधिकार का इस निपुणता से प्रयोग करता था कि उसके भय से प्रजाजन न्याययुक्त मार्ग से पृथक नहीं होते थे। वर्ण धर्म के पालन पर दृष्टि रखना राजा का कार्य था। राम ने शम्बूक नामक शूद्र का वध इसलिए किया कि उसने वर्णधर्म के विरुद्ध अरण्य में तपश्या प्रारम्भ की। प्रजा की सुरक्षा के साथ ही राज्य के योगक्षेम के साधनों में वृद्धि करना भी राजा के कर्तव्यों में सम्मिलित था। इस प्रकार के राजा के शासन में राज्य धन धान्य से समृद्ध होता था और प्रजाजन उसका हृदय से स्वागत करते थे। वाल्मीकि ने ऐसे राज्य को 'स्फीत' कहा है। उस समय के राष्ट्रीय जीवन में कषि निर्वाह का प्रमुख साधन थी। अतः राजा को कृषि के साधन तथ व्यवसाय की सुरक्षा और अभ्युन्नति का पूर्ण ध्यान रखना होता था। राजा अपने राज्य के प्रत्येक अच्छे और बुरे घटना चक्र का उत्तरदायी होता था। इसलिए व्यक्तिगत रूप से वह अपने राज्य के प्रशासनिक क्रियाकलापों का स्वयं निरीक्षण करता था।

अपने भावी कर्त्तव्यों के पालन के लिए राजा के प्रारम्भिक प्रशिक्षण पर पूर्ण अवधान दिया जाता था। राम तथा भ्राताओं के प्रशिक्षण के विवरण से राजकुमारों की शिक्षा पद्धत्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वेद तथा वेदांगों का प्रशिक्षण और अभ्यास उस समय की शिक्षा पद्धति का अनिवार्य अंग था। राजा की शिक्षा में सेना, संगठन, संचालन तथा शासन दक्षता का प्रमुख रूप से समावेश था। धनुर्वेद की शिक्षा के अन्तर्गत सैन्यवार्ता आती थी और राज से उस पर पूर्ण अधिकार की आशा की जाती थी। विभिन्न शस्त्रों का प्रयोग तथा उससे रक्षा राजशिक्षा का महत्वपूर्ण अंग था। अश्वों और गजों पर आरोहण तथा अवरोहण एवं युद्ध काल में उनके सफल प्रयोग तथा अवसरानुकूल उनसे कार्य लेने की पद्धति में राजा को अपनी बुद्धि विकसित करनी चाहिए।

प्रायोगिक शिक्षा का महत्व था। अपनी शिक्षा के अन्त में राजकुमार को प्रशासन के किसी विभाग से सम्बद्ध किया जाता था। दशरथ ने राम को अनेकों बार दस्युदमनार्थ अभियान में भेजा था। पौर कार्यों में भी नैगमों के साथ उन्हें नियुक्त किया गया था जिन्हें सन्तोषप्रद रीति से उन्होंने पूरा किया। उन दिनों जब कि राजा पर लिखित कोई प्रतिबन्ध नहीं हुआ करता था, राजा की नैतिक निष्ठा का महत्व बहुत अधिक था। कुशल विद्वान् वृद्धजनों से पुराकथाओं का श्रवण तथा अनुभवों का लाभ वह प्राप्त करता था।

रामायण काल में राजसूय यज्ञ का सम्पादन प्रभूत मात्रा में प्रचलित था। राम ने दशरथ को अनेक राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञकर्त्ता के रूप में स्मरण किया है। राजसूय का अनुष्ठान राज्यारोहण के अवसर पर होने से इसका राजनैतिक महत्व भी था। दशरथ ने अपने राज्यारोहण के अवसर पर राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। राम ने भी अपने राज्यारोहण के अनन्तर राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव किया था। वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान ब्राह्मण अपने धर्मानुष्ठान के अंगरूप में करते थे।

राज्याभिषेक का विवरण रामायण में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है। अयोध्याकाण्ड में राम के असमाप्त राज्याभिषेक का वर्णन है। किष्किन्धाकाण्ड में सुग्रीव के वानरराज पदपर आसीन होने का विवरण है। लंका पर आक्रमण के पूर्व रावण का परित्याग कर विभीषण राम की शरण में आया तब राम ने अपनी ओर से उसे लंका के राजा पद पर अभिषिक्त कर दिया। फिर रावण वध के अनन्तर विधिपूर्वक उसका राज्याभिषेक सम्पादित किया गया। वनवास की अवधि पूरी कर अयोध्या लौटने पर राम का राज्याभिषेक हुआ।

राजा की जीवित अवस्था में ही युवराज के रूप में चयन हो जाने की परंपरा, युवराज पद पर चयन की संसुबद्ध प्रक्रिया, अभिषेक की विधियां तथा अनुष्ठान आदि बातें इस विवरण से ज्ञात होती है। युवराज का राजा की परिणीता पत्नी से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र होना; अपने गुणों के कारण प्रजा में उसका प्रिय होना तथा प्रजा के कल्याण की हृदय से कामना होना आवश्यक था।[10]

संदर्भ सूची

1. महाभारत शांतिपर्व 67.20
2. रामायण 7.76.42
3. रामायण 7.5.14
4. रामायण 2.13.21
5. रामायण 2.6.14, 2.21.16, 2.93.6
6. रामायण 4.22.11
7. रामायण 2.32.15–16
8. मनुस्मति 71.18
9. अर्धशास्त्र 1.5
10. 2.3.26